



भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञानार्जन के मनोवैज्ञानिक आधार

डॉ. श्याम लाल

आचार्य, संस्कृत विभाग
चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय
कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

शोध सार –

मनुष्य वस्तुतः आध्यात्मिक प्राणी है। भारतीय चिन्तन की मूल प्रकृति आध्यात्मिक विद्या है, जिसे 'परा विद्या' कहा गया है। इसी विद्या के द्वारा विद्यार्थी में आत्मज्ञान की समझ विकसित होती है और मानव जीवन के उद्देश्य से साक्षात्कार होता है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास अर्थात् उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक विकास और नैतिक उत्थान के लिए आध्यात्मिक विकास आवश्यक है, जो व्यक्ति को आत्मज्ञान और परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

आधुनिक शिक्षा व वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मानव की इस आध्यात्मिक प्रकृति की घोर उपेक्षा करते हुए भौतिक चिन्तन व भौतिक विकास को ही आत्मोन्नति मानते हुए भौतिकवाद पर ही बल दिया गया है। फलतः विद्यार्थी की तार्किक क्षमता, ज्ञान प्रक्रिया, एकाग्रता, ध्यान, योग, ब्रह्मचर्य, संस्कार और नैतिकता जैसे आधार विलोपित होते जा रहे हैं, जो किसी भी राष्ट्र के विकास में घातक एवं विध्वंसकारी सिद्ध हो रहे हैं।

शब्द कुंजी –

मूल प्रकृति, चिन्तन, परा विद्या, आध्यात्मिक, चेतना, भौतिकता, अन्तर्निहित, अन्तःकरण, इन्द्रियनिग्रह, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, एकाग्रता, चित्तवृत्तियां, ब्रह्मचर्य, आत्म-संयम, संस्कार, मनोविज्ञान, योग, विज्ञान, साधन, ज्ञानार्जन।

प्रस्तावना (विषय प्रवेश) –

भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीन काल से ही सुदृढ़ एवं मनोवैज्ञानिक रही है। भारतभूमि ऋषि-मुनियों की तपस्थली रही है। उन्होंने तपस्या, योग, साधना के बल पर जीवन को संयमित करते हुए, इंद्रियों को निग्रह करते हुए, एकाग्रचित्त होकर ज्ञान प्राप्ति का मार्ग दिखलाया था। जो कि ज्ञान का उच्चतम शिक्षण-सोपान कहा जा सकता है।

भारतीय ऋषि परम्परा में आध्यात्मिक चिन्तन प्रमुख रहा है। मनुष्य अपने गहन आध्यात्मिक स्तर पर ही सत्य की जिज्ञासा करता है। वस्तुतः आत्मा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है। अतः सत्य की खोज मनुष्य की सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मनुष्य के मूल में आध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही उसने कला, संस्कृति, सदाचार और धर्म के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त किया है।

इसी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ही मानव अन्य जीवों से भिन्न है तथा स्वयं अपने वातावरण को परिवर्तित कर सकता है, जबकि अन्य जीवों को विवश होकर भौतिक वातावरण को अंगीकार करते हुए उसी में रहना पड़ता है। अतः जीवशास्त्रियों ने मनुष्य को जो उच्चतम जीव कहा है, वह पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः देखा जाए तो मनुष्य आध्यात्मिक जीव है।

आधुनिक शिक्षा में मानव की आध्यात्मिक प्रकृति को नजरअंदाज किया जा रहा है। फलतः मानव आज विकास के विविध आयामों से पूर्णतः अछूता है। अतः भारतीय मनोविज्ञान के इस महत्वपूर्ण तत्त्व को शिक्षा का आधार बनाने की आवश्यकता है।

सकल ज्ञान मानव के अन्तर्निहित –

समस्त ज्ञान मानव के अंतःस्थित है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में 'सभी शक्तियां मनुष्य के अन्तर्निहित हैं।' ज्ञान कोई बाहरी विषय नहीं है, जो कि कहीं बाहर से प्रकट होता हो। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, आत्मा ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान आत्मा का प्रकाश है। मनुष्य को बाहर से ज्ञान प्राप्त नहीं होता प्रत्युत् आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है।

न्याय वैशेषिक दर्शन के ग्रन्थ तर्कसंग्रह में अन्नंभट्ट ने कहा है – 'ज्ञानाधिकरणमात्मा'।¹ अर्थात् ज्ञान के अधिकरण अर्थात् आश्रय को आत्मा कहते हैं।

वस्तुतः मनुष्य की अन्तर्निहित के अंतर में निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता। अतः समस्त ज्ञान, चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, मनुष्य के आत्मा में विद्यमान होता है। वह प्रकाशित न होकर ढंका रहता है, और जब आवरण धीरे-धीरे हटता है, तो हम कहते हैं कि “हम सीख रहे हैं।” शनैः शनैः इस अनावरण की क्रिया बढ़ती है तो ज्ञान में वृद्धि होती जाती है।

अतः शिक्षा का लक्ष्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं है। उसे तो मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण कर या जाग्रत कर विकास करना है।

अन्तःकरण का चतुर्विध स्वरूप –

ज्ञान प्रक्रिया को समझने के लिए वेदान्त में अन्तःकरण के चार प्रकार एवं उनके कार्य इस प्रकार कहे गये हैं –

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तकरणमन्तरम्।

संशयो निश्चयो गर्वस्मरणविषया इमे।^१

अन्तःकरण के चार रूप हैं – मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त। मन से वितर्क और संशय होता है। बुद्धि निश्चय करती है। अहंकार से गर्व अर्थात् अहंभाव की अभिव्यक्ति होती है। चित्त में स्मरण होता है। अन्तःकरण को मन भी कहा जाता है। आत्मा के प्रकाश से ही अन्तःकरण (इन्द्रिय) द्वारा ज्ञान होता है।

विविध ज्ञान विधि –

ज्ञान प्राप्ति के कुछ प्रमाण न्याय दर्शन में बताये गये हैं। जिससे विषयों का ज्ञान होता है –

1. **प्रत्यक्ष ज्ञान** – ज्ञानेन्द्रियों के विषय – सन्निकर्ष के आधार पर उत्पन्न अन्तःकरण की वृत्ति स्वरूप अध्यवसाय को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। इस प्रक्रिया को चार अंगों में विभाजित किया गया है –

- I. आत्मा का मन के साथ संयोग।
- II. मन का इन्द्रिय के साथ संयोग।

III. इन्द्रिय का अर्थ (विषय) के साथ संयोग तदनन्तर

IV. ज्ञान की उत्पत्ति।

2. **अनुमान ज्ञान** – ‘अनुमीयते तदनुमानम्’ अर्थात् जिससे अनुमिति की जाती है वह अनुमान कहलाता है। अनुमान अर्थात् पीछे होने वाला ज्ञान। अर्थात् एक बात जानने के पश्चात दूसरी बात का ज्ञान ही अनुमान कहलाता है। जैसे कोई व्यक्ति पर्वत पर जाकर दूर उठते हुए धुएँ को देखता है तो उसे बिना अग्नि को प्रत्यक्ष देखे भी ज्ञान होता है कि यह पर्वत अग्निवाला है। पर्वत में यह अग्नि का ज्ञान ही अनुमिति है। यह अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। पूर्व में जब अग्नि के साथ धुएँ को प्रत्यक्ष देखा है तभी धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान होता है।
3. **शब्द ज्ञान** – भारतीय दर्शन में शब्द (मौखिक साक्ष्य) ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, विशेषकर विश्वसनीय स्रोतों जैसे कि वेद या गुरुओं से प्राप्त, वृद्धजनों से प्राप्त ज्ञान। इस ज्ञान को दर्शन की भाषा में आप्तवाक्य (विश्वसनीय कथन) कहा जाता है और इसे प्रत्यक्ष और अनुमान के बाद ज्ञान का एक प्रामाणिक स्रोत माना जाता है। वेद अपौरुषेय होने के कारण ज्ञान का प्रामाणिक स्रोत माना जाता है। जो मानवीय अनुभूति से परे सत्य को प्रकट कहते हैं। बौद्ध दर्शन में विश्वसनीय गुरुओं की वाणी—ज्ञान को मुक्ति की ओर ले जाने वाला – एक साधन माना जाता है। इसी शब्द से अर्थ का विषय करने वाली चित्त की वृत्ति को शब्द से प्राप्त ज्ञान कहते हैं। चित्त विषय के अर्थ से विषयाकार होता है, शब्द से नहीं। चित्त के विषयाकार होने से ही ज्ञान का संस्कार होता है, जो कि हमारी स्मृति का अंग बन जाता है। शिक्षण विधि में यह ध्यातव्य है। निष्कर्षतः चित्त के विषयाकार होने से ही ज्ञान होता है चाहे वह प्रत्यक्ष से हो, अनुमान से हो या शब्द से हो। ये तीनों ही स्रोत शिक्षण में ज्ञान की प्रक्रिया के अंग हैं।
4. **आत्मज्ञान का बोध** – भारतीय दर्शन व प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में अन्तर्ज्ञान (जिसे आत्मज्ञान या मोक्ष भी कहते हैं) प्राप्त करने की प्रक्रिया बहुआयामी है और इसमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन शामिल है –

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।

निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम्।³

अर्थात् श्रवण के द्वारा शिष्य गुरु के वचन (शब्द-अर्थ) को ध्यानपूर्वक सुनता था, मनन के द्वारा उनके वचन का बौद्धिक परिग्रहण करता था तथा निदिध्यासन के द्वारा उसकी साधनात्मक अनुभूति करता था। जिनके बाद गुरु के मार्गदर्शन में ब्रह्म के साथ एकता का अनुभव होता है। यह एक गहन यात्रा है, जिसमें आध्यात्मिक अभ्यास, नैतिक जीवन, शास्त्रों का अध्ययन और चित्त की वृत्तियों पर विजय प्राप्त करना शामिल है।

इस प्रक्रिया का लक्ष्य सांसारिक दुःखों से मुक्ति (मोक्ष) पाना है जो एक ऐसी अवस्था है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

चित्त की एकाग्रता –

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षण की प्रक्रिया में चित्त की एकाग्रता को अत्यन्त महत्व दिया गया है। जब तक चित्त चंचल अवस्था में रहता है तब तक वह ज्ञानार्जन में बाधक है। भारतीय दर्शन में चित्तवृत्ति निरोध को ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य माना गया है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में चित्त की पाँच अवस्थाएँ कही हैं – मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। एकाग्र ही वह अवस्था है जिसमें अन्य विषयों से ध्यान हटाकर एक ही विषय पर केन्द्रित किया जाता है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।⁴

अर्थात् आसन पर बैठकर मन, इन्द्रियों तथा कर्मों को वश में करते हुए तथा मन को केन्द्र बिन्दु पर स्थिर करके हृदय को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यास करें।

पतंजलि के योगसूत्र में राजयोग में धारणा, ध्यान और समाधि एकाग्रता के ही स्तर कहे गये हैं। जिस स्थान विशेष पर धारणा की जाती है उस स्थान पर वृत्ति के समान रूप से निरन्तर बने रहने को ध्यान कहते हैं –

‘तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्’⁵

एकाग्रता की स्थिति में चित्त विशुद्ध सत्वरूप होता है। इस अवस्था में चित्त एक ही विषय में लीन रहता है। अन्य विषयों से इन्द्रियों को निरोध करता है तथा चित्त की चंचलता को स्थिर करता है। जिससे ज्ञान पिपासु अपने स्वाध्याय में रत हो जाता है और इस अवस्था में प्राप्त ज्ञान स्थिर एवं स्थायी हो जाता है। वर्तमान समय में चित्त को एकाग्र कर अध्ययन में लीन करना बड़ी चुनौती बना हुआ है। बिना चित्त की एकाग्रता के ज्ञानार्जन संभव नहीं है। यह एकाग्रता ध्यान योग के अभ्यास से प्राप्त होती है। वर्तमान में शिक्षा के साथ-साथ योगाभ्यास की महती आवश्यकता है।

ब्रह्मचर्य—पालन —

भारतीय शिक्षण पद्धति का मूल आधार स्तम्भ ब्रह्मचर्य का पालन करना है। ब्रह्मचर्य दो शब्दों से मिलकर बना है — ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है ज्ञान तथा चर्य का अर्थ है विचरण करना। अर्थात् “ज्ञान में विचरण करना” या ज्ञान के पथ पर चलना। ब्रह्मचर्य के पालन से ही शिक्षार्थी का मानसिक और बौद्धिक उत्कर्ष होता था। जाबालदर्शनोपनिषद् के अनुसार मन, वचन और शरीर के द्वारा स्त्री संग का परित्याग अथवा पत्नी से ऋतुकाल के उपरान्त धर्मबुद्धि से संग करना ब्रह्मचर्य है। काम, क्रोध का दमन कर मन को परब्रह्म में एकाग्र करना सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य है

—

‘अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्’।⁶

अर्थात् अस्तेय की दृढ़ता होने पर साधक को सर्वरत्नों की प्राप्ति होती है। पर वस्तु में राग का प्रतिषेध होना ही अस्तेय है। केवल परवस्तु का ग्रहण न करना ही नहीं, अपितु परद्रव्य की अभिलाषा ही न करना अस्तेय है।

उपस्थेन्द्रिय का संयम ब्रह्मचर्य कहलाता है —

ब्रह्मचर्ये गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।⁷

उपस्थेन्द्रिय समस्त इन्द्रियों में सबसे ज्यादा कामाग्नि को उदीप्त करती है परन्तु अन्य इन्द्रियाँ भी कामोदीपन में सहायक होती हैं। इसलिए समस्त इन्द्रियों के निग्रहपूर्वक उपस्थेन्द्रिय पर संयम करना चाहिए। शिक्षार्थी के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन

करते हुए वेद कहता है कि देवताओं ने ब्रह्मचर्यरूपी तप से ही मृत्यु को जीत लिया है तथा इन्द्र ब्रह्मचर्य के कारण ही देवताओं में श्रेष्ठ है –

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नतः ।
इन्द्रो हि ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरतः ।।”⁸

अन्तेवासी के बौद्धिक और शिक्षित जीवन की श्रेष्ठता के निमित्त ही भारतीय संस्कृति की ब्रह्मचर्याश्रम की संकल्पना की गयी है। इसका तात्पर्य केवल इन्द्रियनिग्रह ही नहीं है अपितु इसके साथ ही ज्ञानार्जन भी है। तप, त्याग और संयम नियम का भी ब्रह्मचर्याश्रम में महत्त्व रहा है। ज्ञान बौद्धिक प्रक्रिया है। राग-द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार आदि मन के विकारों से बुद्धि आच्छादित हो जाती है, अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है –

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।⁹

अर्थात् इन्द्रियविषयों का चिन्तन करते हुए मनुष्य की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसी आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और फिर काम से, क्रोध प्रकट होता है। क्रोध से पूर्ण मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नाश होने से पतन हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी का श्रेय मार्ग से पतन का कारण इन्द्रिय निग्रह न करके चित्त की एकाग्रता न करना ही है। अतः ज्ञान प्रक्रिया में एकाग्रता का महत् योगदान है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य का पालन करवाया जाए तो समाज व देश में बढ़ रहे अनैतिक, दुराचार का ह्रास होगा और भारत पुनः विश्वगुरु बनने की दिशा में आगे बढ़ेगा।

संस्कार सृजन –

ज्ञानार्जन में संस्कार एक ऐसी मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो बालक के समग्र व्यक्तित्व के परिष्कार और विकास के लिए अत्यान्तावश्यक है, व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत एवं सभ्य बनाने में इनकी महत्ता बनी रहती है। संस्कारों का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

व्यक्ति के चरित्र और स्वभाव को गढ़ने एवं शुद्ध करने की एक प्रक्रिया है जो जन्म से मृत्युपर्यन्त अनवरत चलती है। ये मात्र धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि आत्मनिर्माण, नैतिक विकास और सामाजिक समायोजन के लिए वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आधार पर आधारित जीवन-विज्ञान है, जिससे उसका व्यवहार, विचार और भविष्य के प्रति प्रतिक्रियाएँ प्रभावित होती है।

भारतीय संस्कृति में हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है जो मानव को उसके गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक किए जाते हैं। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में बालक को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से परिचित करवाने के लिए विद्यारम्भ संस्कार किया जाता था। गुरुकुल परम्परा में यज्ञोपवीत संस्कार का विधान था तदोपरान्त ही बालक को अध्ययन के लिए गुरुकुल भेजा जाता था। यज्ञोपवीत से ही बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी। यज्ञोपवीत के बाद बालक को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित करवाने के लिए 'वेदारम्भ' संस्कार किया जाता था। उपरोक्त संस्कार ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है, जिनका पालन करते हुए ब्रह्मचारी संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा करते थे। संस्कार ज्ञानार्जन की वह प्रक्रिया है, जिससे बालक का शारीरिक-मानसिक व बौद्धिक विकास तो होता ही है साथ ही परिष्कृत व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार संस्कार सृजन ज्ञान प्रक्रिया का मूल आधार है। अधिगम की सकल प्रक्रिया इसी पर आधारित है। इतना ही नहीं राष्ट्र में नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य व व्यैक्तिक मूल्यवर्धन में संस्कार ही विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

योगाभ्यास –

ज्ञानार्जन के लिए योगाभ्यास शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है, जिससे एकाग्रता, स्मरण शक्ति और सीखने की क्षमता में वृद्धि होती है। योग के माध्यम से तनाव और मानसिक विकारों को कम किया जा सकता है जो सीखने की प्रक्रिया में बाधक होते हैं। नियमित योगाभ्यास से मन शांत रहता है और शरीर में ऊर्जा का संचार होता है। योगाभ्यास केवल शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मज्ञान और समग्र चेतना के

विकास में भी सहायक है जो सत्य ज्ञान की ओर ले जाता है। योग एक ओर चित्त को स्थिर और केन्द्रित करता है, वहीं जटिल विषयों को समझने और ज्ञानार्जन में सहायक होता है।

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है – “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”।

अर्थात् चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही ‘योग’ नाम से जाना जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में कहा है कि अष्टांग योग के अभ्यास से सुख-दुःख का कारण, संस्कारों तथा क्लेशों को शुद्ध किया जाता है, जिससे भीतर ज्ञान रूपी प्रकाश बढ़ता जाता है और विवेक ख्याति का उदय हो जाता है। अतः अष्टांग योग की साधना अति महत्वपूर्ण साधन पद्धति है। इसके आठ अंग बताये गये हैं –

‘यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा ध्यानसमाद्योऽष्टावङ्गानि।’¹⁰

अर्थात् यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के अष्ट अंग हैं।

विद्यार्थी जीवन के मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण आधार योग है। बाबा रामदेव पतञ्जलि के योग के एक अंश मात्र के प्रचार करने से विश्वविख्यात हो गए। जनचेतना जाग्रत हुई और आज हर व्यक्ति भौतिकयुग की चकाचौंध में शान्ति की खोज में तथा तनावरहित जीवनशैली हेतु योग को अपने जीवन का हिस्सा बना रहा है। प्राचीन गुरुकुल परम्परा में ब्रह्मचारी को योग का प्रशिक्षण दिया जाता था, जिससे उसका समग्र विकास होता था। भारतीय प्राचीन शिक्षण केन्द्रों में योग का विशेष ज्ञान प्रदान किया जाता था। वर्तमान शिक्षा पद्धति में योग को आवश्यक विषय के रूप में अध्ययन करवाया जाए तो विद्यार्थी का निस्सन्देह न केवल शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास होगा, बल्कि आध्यात्मिक चेतना का संचार होगा और स्वस्थ भारत का निर्माण होगा।

निष्कर्ष –

आत्मबोध व आत्मज्ञान से ही विद्यार्थी का समग्र विकास ही ज्ञानार्जन में मील का पत्थर होगा। शिक्षा के मनोवैज्ञानिक मूल आधार के रूप में व ज्ञान प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में चित्त की एकाग्रता, ब्रह्मचर्य का पालन, संस्कारों का सृजन व योगाभ्यास की महती आवश्यकता है।

विद्यार्थी के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व निर्माण में उक्त मनोवैज्ञानिक आधारों को शिक्षा में समावेश करते हुए आधुनिक शिक्षा केन्द्रों में आत्मसात् करते हुए अध्ययन करवाया जाना चाहिए, ताकि शिक्षा के सही मायने विद्यार्थी समझ सकें और उसमें एक अच्छी समझ विकसित हो ताकि राष्ट्र विकास के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता रहे।

¹ तर्कसंग्रह—1.8

² वेदान्त परिभाषा

³ शुक्ररहस्योपनिषद्

⁴ श्रीमद्भगवद्गीता 6/12

⁵ पतञ्जलि योगसूत्र — 3/2

⁶ व्यास भाष्य योगसूत्र — 2/37

⁷ व्यास भाष्य योगसूत्र — 2/30

⁸ अथर्ववेद — 3/5/19

⁹ श्रीमद्भगवद्गीता — 2/62-63

¹⁰ पतञ्जलि योगसूत्र — 2/29